द्वितीय प्रकरण

जीवन व्यक्तित्व एवं काव्यग्रन्थ

ठाकुर नाम के एकाधिक कवि : पं० परशुराम चतुर्वेदी ने बुन्देलखण्डी ठाकुर पर विचार करते हुए लिखा है -- 'हिन्दी साहित्य में ठाकुर नाम के कई कवि हुए जिनकी कविताओं का पृथक्करण सरल नहीं है। मिश्र बन्धुओं ने चार ठाकुरों का होना लिखा है, किन्तु उनमें से असनी वाले कृष्णनाथ के पुत्र का ही वर्णन किया है। पं० रामनरेश त्रिपाठी और स्व० बाबू श्यामसुन्दरदास ने भी इसी ठाकुर की ओर ध्यान दिया है[1]। नवीन कवि ने अपने 'प्रबोध रस सुधासर' में तीन ठाकुर कवियों की चर्चा की है जिन्हें उन्होंने क्रमशः १. ठाकुर प्राचीन, २. ठाकुर ब्राह्मण फांसीवारे, ३. ठाकुर लाल वृन्दावनवासी बतलाया है[2]। इससे इस प्रश्न पर पूरा प्रकाश नहीं पड़ता है। ठाकुर शिवसिंह, डा० ग्रियर्सन तथा अन्य ऐसे इतिहासकारों ने भी इसे हल करने में सफलता नहीं पाई है। लोगों का ध्यान अधिकतर उपर्युक्त असनी वाले ठाकुर की ओर ही गया है। 'बिहारी सतसई' के टीकाकार होने से उनकी प्रसिद्धि भी सबसे अधिक रही है। पं० अंबिकादत्त व्यास ने भी अपने 'बिहारी निहार' ग्रन्थ में इन्हीं का वर्णन विशेष रूप से किया है। ठाकुर सम्बन्धी भ्रान्तियों के निराकरण का प्रयास स्व० लाला भगवान दीन ने किया है। 'कायस्थ कविमाला' नामक ग्रन्थ के प्रस्तुत करने में जब मुझे कायस्थ कवियों की जीवनियों की खोज हुई तब ज्ञात हुआ कि ठाकुर उपनामधारी कई एक कवि हुए हैं जिनमें से तीन ठाकुर बहुत प्रख्यात हुए हैं। एक प्राचीन ठाकुर कवि -- असनी जिला फतेहपुर निवासी जो सं० १७०० के लगभग हुए। दूसरे नरहरि वंशी -- असनी निवासी ठाकुर कवि -- जिनके पिता का नाम कृष्णनाथ था और जिन्होंने सं० १८६१ वैक्रमीय में 'बिहारी सतसई' की टीका (देवकीनन्दन टीका) लिखी। इनका

---

१. मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियां तथा नव निबन्ध, पृ० १५७
२. साहित्य समालोचक, भाग ३, पृ० ४७

बहुत कुछ वर्णन साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अपने 'विहारी विहार' नामक ग्रन्थ में लिखा है। तीसरे बुन्देलखण्डान्तर्गत जैतपुर निवासी ठाकुर कवि हुए।[१] स्व० शुक्ल जी ने भी स्व० लाला भगवानदीन की बात पर मोहर लगाई है। इस नाम के तीन कवि हो गये हैं जिनमें दो अपनी के ब्रह्मभट्ट थे और एक बुन्देलखण्ड के कायस्थ[२]। रीतिकाल के मर्मज्ञ विद्वान पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बुन्देलखण्डी ठाकुर के अतिरिक्त केवल एक ठाकुर कवि का होना सिद्ध किया है। मिश्र जी ने लिखा है -- 'तीन ठाकुरों में से दो ही ठाकुर मानने का मुख्य कारण यह है कि प्राचीन ठाकुर की कल्पना 'शिवसिंह सरोज' के आधार पर की गई है। शिवसिंह सरोज में जो प्राचीन ठाकुर माने गये हैं, वे रीतिबद्ध ठाकुर से भिन्न नहीं हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि 'कालिदास हजारा' नाम की जिस पुस्तक को शिवसिंह सेंगर ने आधार बनाया उसमें उन्हें भ्रम हो गया। एक पार्वती संग्रह जो कालिदास की 'जंजीरा' नामक पुस्तक की जिल्द में एक ही साथ था उसे सेंगर जी ने कालिदास हजारा मान लिया। इसलिए जो ठाकुर रीतिबद्ध पार्वती से वे कालिदास के पूर्व मान लिए गए[३]। मिश्र जी की इस बात से स्पष्ट हुआ कि जैतपुरी ठाकुर के अतिरिक्त तत्वतः एक ही ठाकुर हैं। प्राचीन ठाकुर भ्रम मात्र हैं। यही जैतपुरी ठाकुर इस प्रबन्ध के प्रतिपाद्य हैं।

जीवन चरित : 'ठाकुर का पूरा नाम ठाकुरदास था। वे कायस्थ जाति के थे। उनके पिता का नाम गुलाबराय था जो खड़गराय के पुत्र थे। खड़गराय अकबर की आगरे वाली साठ हजार सिपाहियों की फौज के आफिसर थे। ठाकुरदास का जन्म उनके ननिहाल ओरछा में सं० १८२३ के किसी मास में हुआ। वहीं पर उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा भी मिली थी। उनके पूर्वज काकोरी (जिला लखनऊ) की ओर से आए थे। किन्तु ठाकुरदास पर अपने जन्म प्रदेश बुन्देलखण्ड का ही अधिक प्रभाव पड़ा। वे कुछ बड़े होने पर अपनी मातृभाषा में ही कविता का अभ्यास करने

---

१. ठाकुर ठसक, 'जीवन चरित', पृ० १
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३७६
३. हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृ० ६६६, पाद टिप्पणी

लगे । यह सब होते हुए भी वे किसी कारणवश जैतपुर चले आए जहां के तत्कालीन राजा केशरीसिंह ने उनकी काव्य रचना से प्रसन्न होकर उन्हें अपना दरबारी कवि बना लिया। जैतपुर से वे कभी-कभी विजावर भी जाया करते थे जहां पर उनके अन्य स्वजातीयों का निवास था । वहां के भी राजा का नाम केशरी सिंह ही था और वे भी इन्हें जैतपुर वाले नरेशकी भांति सम्मानित करते थे । दोनों राजाओं ने इन्हें कुछ गांव दिए थे । जैतपुर के केशरी सिंह का देहान्त हो जाने पर कुछ समय तक विजावर में ही रहे। परन्तु स्व० राजा के पुत्र पारीछात के राज्य काल में ये फिर जैतपुर लौट आए और उनके साथ रहकर इनकी सबसे अधिक प्रसिद्ध हुई। इनका सम्मान आस-पास के अन्य राजा एव रईस भी किया करते थे जिससे इनकी ख्याति अन्य प्रदेशों तक फैल गई थी । इनका देहान्त लगभग सं० १८८० में हुआ और इनके पुत्र दरियाव सिंह चातुर तथा पौत्र शंकर प्रसाद भी कवि थे[१] । स्व० शुक्ल जी ने ठाकुर का कविता काल सं० १८५० से सं० १८८० तक माना है[२] । कविता काल के इस सीमा निर्धारण का कोई आधार शुक्ल जी ने नहीं दिया है ।

स्व० लाला भगवान दी ने ठाकुर का उद्धार किया । लाला साहब में एक लगन थी जिसकी प्रेरणा से वे बुन्देलखण्ड की गलियों में घूमे, विजावर में भटके। इस भटकने और घूमने के ही फलस्वरूप ठाकुर का प्रामाणिक जीवन चरित प्राप्त हो सका। लाला साहब ने ठाकुर के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाली अनेक घटनाओं का संकलन किया । इस कवि के जीवन वृत्त के लिए ठाकुर ठसक की भूमिका सभी परवर्ती इतिहासों का उपजीव्य रही है । स्व० लाला साहब ने ठाकुर की वेश-भूषा की भी कल्पना की है । सर पर पगड़ी, बदन पर खुली बाहों की मिरज़ई, कमर से कसी हुई एक तलवार, एक ओर बुन्देलखण्डी हाथभर लम्बी पीतल की दावात, पावों में झब्बेदार बुन्देलखण्डी जूता -- यह उस समय के बुन्देलखण्डी कायस्थों का फैशन था ।

---

१. ठाकुर ठसक, जीवन चरित, पृ० ५-२३

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३८३

इसी से ठाकुर का भी फोटो समझ लेना चाहिए[१]।

वंशवृक्ष[२]

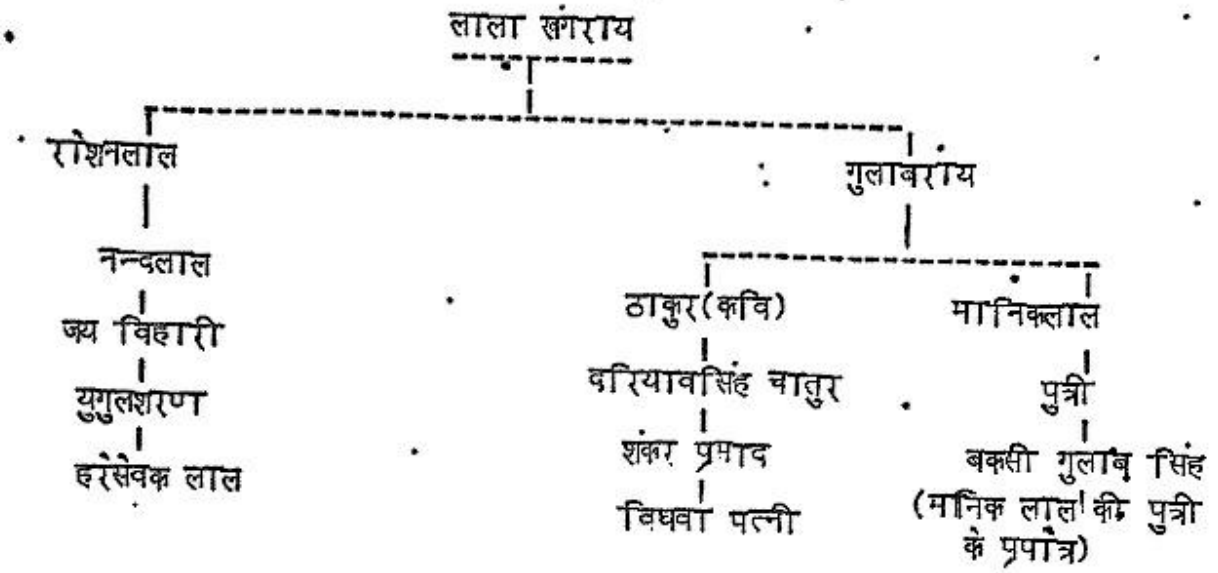

काव्य में व्यक्तित्व : एक प्रश्न :

ठाकुर के व्यक्तित्व की व्याख्या करने के पूर्व हमें यह विचार कर लेना चाहिए कि व्यक्तित्व क्या है ? काव्य से उसका क्या सम्बन्ध है ?

मनुष्य मूलत: एक है । लेकिन इस एकता के होते हुए भी हम मनुष्य-मनुष्य में बड़ा भेद पाते हैं। दोनों के आहार-व्यवहार, वेश-भूषा से लेकर उनकी चिन्ताधाराओं तक में एक अन्तर दृष्टिगत होता है। दो मनुष्य एक ही समय एक वस्तु को देखकर भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त करते हैं । किसी कामिनी को देख कर भक्त 'अवगुन मूल सूल प्रदे' का नारा लगाता है, कवि उसके चित्रकार की तूलिका को चूमने के लिए मुख आगे बढ़ाता है , कामुक की दशा कुछ और ही हो जाती है । इस दृष्टान्त से स्पष्ट हुआ कि एक

१. ठाकुर ठसक, 'जीवन चरित', पृ० ८
२. वही

ही स्वाति जल जिस तरह कदली, सीप, भुजंग -- तीनों स्थानों पर तीन रूप धारण करता है उसी प्रकार एक ही वस्तु से एक ही समय में विभिन्न मनुष्यों को विभिन्न प्रतीति होती है। भूखे को सूरज चांद भी रोटी ही मालूम पड़ते हैं। आखिर यह भेद क्यों ? यह भेद मनुष्य के संस्कारों के भेद के कारण है। यह संस्कार क्या वस्तु है ? मनुष्य दुनियां में आता है कुछ संस्कार लेकर। वे संस्कार चाहे वंशपरम्परा से सम्बद्ध हों, चाहे पूर्वजन्म के कृत्यों से --किन्तु होते कुछ अवश्य हैं। एक ही मां के पेट से एक ही समय उत्पन्न दो शिशुओं में से एक तो थोड़े ही दिनों में अपने परिवार के लोगों को पहचानने लगता है दूसरा विलंब से पहचानता है। एक थोड़े ही दिनों में बोलने लगता है दूसरा देर से बोलता है। इस भेद का कारण हम संस्कार भेद ही कहेंगे।

जीवन का निर्माण जीवन की अच्छी बुरी परिस्थितियों पर निर्भर है। यद्यपि ऐसा कहा जाता है कि प्रतिभा परिस्थिति से दबती नहीं है। सूर्य की रश्मि की तरह घने बादलों को चीर कर फूटती है। किन्तु यह नियम विशिष्ट प्रतिभा के लिए है। साधारण प्रतिभाएं तो परिस्थिति प्रतिकूलता में दब ही जाती हैं। परिस्थिति का प्रभाव मानव के स्वभाव पर भी पड़ता है। परिस्थिति की चोट कभी तो मनुष्य को चिड़चिड़ा एवं उदास बना देती है कभी गम्भीर चिन्तक। यह कहना कि परिस्थितियां मनुष्य के विचारों को एक मोड़ देती हैं, सत्य ही है। एकाध असाधारण व्यक्तियों के लिए न सही हो किन्तु सामान्य के लिए तो यही सत्य है। परिस्थिति से आशय मनुष्य के भरण-पोषण से लेकर उसकी शिक्षा-दीक्षा एवं सब तरह की सुख-सुविधा से है। एक पौधे के लिए जल और सूर्य का प्रकाश मिलना भी एक परिस्थिति है और इनसे वंचित रहना भी एक परिस्थिति है। परिस्थिति भेद के कारण एक ही पौधे की दो दशाएं हैं।

देश की प्राकृतिक स्थिति भी मनुष्य को बदल देती है। उनके आचार-विचार, खान-पान, वेश-भूषा--सब पर प्रकृति का नियंत्रण होता है। भारतीय साहित्य में या तो शृंगारी साहित्य की सृष्टि हुई या आध्यात्मिक साहित्य की। इसके लिये यहां की प्रकृति भी उत्तरदायी है। यहां की भूमि पर थोड़े आयास से ही अन्न मिल जाता था। देश सम्पन्न था। वर्ष के अधिकांश दिनों में लोग बैठे रहते थे। उस बैठकी में मन या तो तत्व चिन्तन की ओर झुकता था या शृंगार के दलदल में फंसता था।

मनुष्य इस पृथिवी पर जन्म लेकर तमाम स्रोतों से ज्ञानार्जन करता है। अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञानराशि को , जो पुस्तकों में बंधी होती हैं , वह देखता है । किन्तु इस पुस्तक ज्ञान से उसकी शिक्षा पूरी नहीं होती। पुस्तक ज्ञान शिक्षा नहीं अपितु शिक्षा का एक अंग है । मानव की असली शिक्षा तब पूरी होती है जब वह आखें खोलकर सड़कों पर घूमता है । वृक्षों के गले में लिपटी लताओं को देखता है । गर्मी के दिनों में अरण्य में अजगर के शरीर पर पड़े स्वेद बिन्दुओं को प्यासे गिरगिट पी रहे हों -- यह दृश्य देखता है । खिले फूलों से लदी डालियों को भी देखता है और पतझड़ के पीले पत्तों से लदी डालियों को भी । मणिकर्णिका की चिताओं की लाल लपटों को देखता है, दशाश्वमेध के भिक्षुकों की चीख को सुनता है । सांड़ों की तरह मोटे पंडों की डकार को भी सुनता है । इस प्रकार दुनिया को देखते-देखते मनुष्य के पास एक कोष हो जाता है जिसे जगत जीवन सम्बन्धी अनुभवों का एक वृहत् संग्रह कह सकते हैं ।

इन सब अनुभवों , संस्कारों के अतिरिक्त मनुष्य में एक संवेदन शक्ति होती है । इसी संवेदन शक्ति के ही कारण जीवन की करुण या सुखद घटनाएं उसके हृदय को छू जाती हैं --

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि
तूने कैसे पहचाना ?
कहां कहां हे बालविहंगिनि
पाया तूने यह गाना ?[१]

प्रथम रश्मि के आगमन की जानकारी सबसे पहले बालविहंगिनि को ही होती है । प्रथम रश्मि के शुभागमन पर अभिनन्दन गान की प्रथम अधिकारिणी वही सिद्ध हुई। उसी बालविहंगिनि की तरह कवि की भी अनुभूति बड़ी तीव्र होती है । मनुष्य की अनुभूति से मतलब उसकी उस ग्रहण-शीलता से है जिसके आग्रह से वह एक बूढ़े , एक रोगी, तथा एक शव को देखकर दुनिया छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है । यह अनुभूति सबमें सम परिमाण में नहीं होती । एक शव के चारों ओर बैठकर कुछ लोग

---

१. वीणा (प्रथम रश्मि), सुमित्रानन्दन पन्त

छाती पीटकर रो रहे हैं । इस चित्र को देखकर कुछ लोग ऐसे होंगे जिनके पैर वहीं गड़ जायेंगे । कुछ ऐसे होंगे जो उधर एक गहरी दृष्टि डालकर आगे बढ़ जायेंगे । कुछ मनुष्य उस घटना को देखकर उससे इस तरह नहीं छू जाते जैसे जुलाहे की दुकान की खटर-पटर की आवाज़ किसी को बांध नहीं पाती ।

काव्य के सम्बन्ध में विचार करते हुए सौन्दर्य तत्व पर भी विचार कर लेना आवश्यक है । गुण न हिराने हिराने गुण ग्राहक हैं -- यह बहुत पुरानी उक्ति है । सौन्दर्य तभी सफल है जबकि उसका कोई पारखी हो । उस सौन्दर्य के आसव को छाकने वाला भी कोई चाहिए । 'केहि पर करौं सिंगार पिया मोर आन्हर' नायिका की यह उक्ति स्पष्ट कर देती है कि 'सिंगार' को सम्बन्ध किसी की दो आंखों से है । सौन्दर्य का सीधा सम्बन्ध मनुष्य की सौन्दर्य भावना से है । इस सम्बन्ध में दो धारणाएं रही हैं -- १. कोई वस्तु सुन्दर है इसलिए सबको अच्छी लगती है, २. कोई वस्तु हमको अच्छी लगती है इसलिए सुन्दर है । सौन्दर्य विषयक पहली धारणा सौन्दर्य के सच्चे रूप का उद्घाटन करती है । सच्चा सौन्दर्य वही है जो सदा सर्वत्र सबको अपना दास बना ले.--

"देखत ही जो मन हरै , सुख अंखियन को देय।
देव सराहिय वहै कवि, जा चेरो करि लेय ।।

सौन्दर्य सदा सौन्दर्य ही रहता है । खिले फूल में सौन्दर्य है, किन्तु मुरझाए फूल में उससे अधिक । यदि किसी वस्तु के सौन्दर्य को एक देशीय लोग पसन्द करते हैंया कोई वस्तु दूसरे क्षण असुन्दर हो जाती है तो समझ लेना चाहिए कि उसका सौन्दर्य पूर्ण नहीं था । सौन्दर्य का सम्बन्ध मनुष्य की सार्वभौम शाश्वत सौन्दर्य भावना से है । लेकिन यह सौन्दर्य भावना भी सबमें सम परिमाण में नहीं होती । उषा को देखकर यदि किसी को नायिका के अधरों की लाली सूझती है तो उसके मित्र को कापालिक के कटे माथ की भी याद आ सकती है । यह है सौन्दर्य भावना का अन्तर । सौन्दर्य के साथ सबकी सौन्दर्य भावना का तादात्म्य नहीं हो पाता । अगर होता भी है तो उस तादात्म्य के कई स्तर होते हैं ।

सौन्दर्य विषयक एक दूसरी धारणा का भी उल्लेख है --

'समय समय सुन्दर सबै रूप-कुरूप न कोइ ।
मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ[१] ।।

इसमें प्रेम लगी गदही से परी कौन चीज़ है ?' की बात कही गई है । सुन्दर वस्तु तो सुन्दर है ही । उसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते । किन्तु जिस वस्तु से हमारे हृदय का सम्बन्ध हो जाता है, वह वस्तु सुन्दर न हो, तब भी सुन्दर है । इस प्रकार सौन्दर्य के दो प्रकार हो गए (१) विषयगत सौन्दर्य (आब्जेक्टिव ब्यूटी), (२)विषयीगत सौन्दर्य (सब्जेक्टिव ब्यूटी) । इस सौन्दर्य विषयक दूसरी धारणा को पहली धारणा का अपवाद कह सकते हैं । सुन्दर वस्तु ही सुन्दर है । इस सूत्र का अपवाद यह है कि असुन्दर वस्तु भी कहीं-कहीं सुन्दर है या कम सुन्दर भी कहीं-कहीं विशेष सुन्दर है ।

इन सब व्याख्याओं के बाद अब कह सकते हैं कि काव्य सृजन का सम्बन्ध मनुष्य के संस्कार , उसके अनुभव भाण्डार , उसकी परिस्थिति, उसकी संवेदनशीलता तथा सौन्दर्य भावना से है । इन सब काव्य विधायक तत्वों के लिए यदि एक ही शब्द का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि काव्य रचना का सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तित्व से है । व्यक्तित्व मनुष्य की भावात्मक एवं बौद्धिक दोनों चेतनाओं के विकास विन्दुओं से बनी एक रेखा है । यह व्यक्तित्व मनुष्य के व्यावहारिक जीवन की कटुता एवं शीतलता का मापक भी है ।

अब प्रश्न है कि काव्य में यह व्यक्तित्व किस प्रकार रूप पाता है ? दार्शनिक व्याख्या करना चाहें तो कहसकते हैं कि'सो कामयत् बहुला प्रजायेय' के फलस्वरूप ही यह अस्मिता का मान उसको दुनिया के व्यापार में संलग्न करता है। वह चाहता है-- अहं स्याम् (मैं रहूं) , एको हम् बहुस्याम् (मैं अनेक रूपों में रहूं), अहं बहुधा स्याम् (मैं सदा रहूं) । मनुष्य भोजन इसलिए करता है जिससे कि वह जीवित रहे । इस जीने की कामना का अंतिम रूप है --अमरत्व की कामना । इसी अमरत्व के लिए वह आत्म-

---

१. विहारी रत्नाकर --दोहा संख्या ४३२

संतानन या संतान के रूप में आत्माभिव्यक्ति करता है । इस मांस पिण्ड के शरीर के नाश के भय से वह अपनी अनुभूतियों को शब्द रूप देकर काव्य रूप में उतार लेता है । इस प्रकार काव्य के मूल में कवि का अहम् (मैं) ही है लेकिन कवि का अहम् बड़ा शीतल होता है । वह विध्वंसकारी नहीं होता । वह चाहता है कि दुनियां रहे , मैं भी रहूं ।

अब प्रश्न यह है कि क्या कवि बनावटी व्यक्तित्व लेकर काव्य में आ सकता है ? क्या वह जीवन भर झूठ बोलकर किसी सत्य वक्ता की मनःस्थिति का चित्र दे सकता है ? निश्चय ही वह पूरा सफल नहीं होगा। रीतिकालीन कवियों ने देव विषयक रति का भी पल्ला पकड़ा लेकिन उनके व्यक्तित्व के विरुद्ध पड़ जाने के कारण अभिव्यक्ति वैसी प्रभावोत्पादक नहीं हो सकी जैसी कि भक्त कवियों की है । वह तो 'राधिका कन्हाई के सुमिरन' का बहाना मात्र रह गई । काव्य की सफलता का सबसे बड़ा निर्णायक है सहृदय का हृदय , न कि रीति ग्रन्थ बनाने वाले की बुद्धि । कवि की अभिव्यक्ति, यदि बनावटी है तो वह हृदय पर प्रभाव नहीं छोड़ सकेगी । पुरइन के पत्ते पर पड़ी पानी की बूंदें की तरह ढुलक जाएगी । काल के हाथों में कवि का भ्रामक व्यक्तित्व या भ्रामक साहित्य अधिक दिन तक ठहर नहीं पाता ।

काव्य में व्यक्तित्व की निश्छल अभिव्यक्ति होनी चाहिए । व्यक्तित्व की महानता ही काव्य की महानता है । न मालूम कितनी राम कथाएं लिखी गईं, किन्तु तुलसी की रामकथा में जो आलोक है वह कहीं नहीं है । इसका क्या कारण है ? वास्तव में , रामचरित मानस का आलोक तुलसी के व्यक्तित्व का आलोक है । गोपियों का क्रन्दन भक्ति विह्वल सूर के हृदय का क्रन्दन है । इन्दुमती के मर जाने पर अज रोए हों या न रोए हों, कालिदास अवश्य रोए थे --

'कालिदास
सच सच बतलाना
इन्दुमती के मृत्यु शोक से
अज रोया या तुम रोए थे ?
कालिदास सच सच बतलाना ।

क्रमशः - -

शिव जी की तीसरी आंख से
निकली हुई महाज्वाला में
घृत मिश्रित सूखी समिधा सम
कामदेव जब भस्म हो गया
तुमने ही तो दृग धोया था ।
कालिदास सच सच बतलाना
रति रोई या तुम रोए थे ?
+ +
कालिदास सच सच बतलाना
रोया बड़ा कि तुम रोए थे?[१]

हम उत्तर रामचरितम् में पढ़ते हैं --

'यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्यानुवर्तते ।
उत्तरं राम चरित तत्प्रणीत प्रयोक्ष्यते[२] ।।

यह देवी सरस्वती जिस ब्राह्मण की वशवर्तिनी है वही ब्राह्मण उत्तर रामचरित नाटक का प्रणयन कर रहा है । इस उद्धरण से स्पष्ट हुआ कि ब्राह्मण बड़ा स्वाभिमानी था । उसके युग के लोग उसे समझ नहीं सके । शृंगार रसराज सिद्ध हो चुका था । लेकिन 'एको रस: करुण एव' की घोषणा किए बिना वह रह न सका। लोक की उपेक्षा इस ब्राह्मण के आत्म विश्वास को विचलित नहीं कर सकी । देखिए --

'ये नाम केचिदिह न: प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्न:।
उत्पत्स्यते कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधि: विपुला च पृथ्वी[३] ।।

---

१. कविताएं(संकलन,१९५४) सं० अजितकुमार, देवीशंकर अवस्थी,नागार्जुन की कविता -- 'कालिदास के प्रति'।
२. उत्तर रामचरितम् , अंक १, श्लोक २
३. भवभूति कृत उत्तर रामचरितम्.-- 'प्रस्तावना'।

"जो लोग मेरा अपमान कर रहे हैं, क्या वे कुछ जानते हैं ?. वे कुछ नहीं जानते । मेरी चेष्टा भी उनको जनाने के लिए नहीं है । काल अनन्त है । पृथ्वी अखण्ड है । कभी कोई मेरा समानधर्मा उत्पन्न होगा । मुझे समझेगा । इस उद्धरण से स्पष्ट है कि कवि का स्वाभिमानी व्यक्तित्व कविता में व्यक्त है --

कबीर का एक दोहा है --

"कबिरा खड़ा बजार में लिए लुआठा हाथ ।
जो घर फूंके आपना चले हमारे साथ[१] ।।"

कबीर अपने युग का सबसे बड़ा सत्यद्रष्टा था । इस व्यक्ति ने हिन्दू मुसलमान दोनों की बुराइयों को आंख फाड़-फाड़ कर देखा । काशी के पंडितों के कृत्रिम आचरण का का भण्डाफोर किया । मौलवी मुल्लाओं का कान गरम किया । दुनिया में सत्य कहने वाले का मार्ग खतरे से खाली नहीं होता है । इसीलिए इस मनीषी ने अपना घर खुद फूंक लिया । घर फूंकने का मतलब है लौकिक विभूतियों का दाय । कबीर की इस उक्ति में अंगारे की तरह दग्धकारी किन्तु शोधक व्यक्तित्व उभरा हुआ है । श्री मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में उनकी वैष्णवता, दिनकर की कविताओं में उनकी राष्ट्रीयता बिना खोजे ही मिल जाती है । काव्य की कोई विधा हो -- किसी न किसी रूप में व्यक्तित्व आता ही है । गीतिकाव्य में मूल भाव बिन्दु कवि का ही जीवन के किसी क्षण की उपलब्धि है । महाकाव्य पढ़ने के बाद एक सन्देश मिलता है, वह कवि की ही भेंट होती है । महाकाव्य के प्रतिष्ठित पात्रों के व्यक्तित्व के निर्माण में कवि के व्यक्तित्व का योगदान होता है। भरत का चरित्र उत्कृष्ट है। लेकिन तुलसी के व्यक्तित्व का रंग चढ़ जाने पर वह और भी श्लाघ्य हो गया है । कामायनी के मनु में प्रसाद की शैवोन्मुखता आ गई है । पश्चिमी आलोचक टी० यस० इलियट का कहना है --

"पोयट्री इज़ नाट ए टर्निंग लूज़आफ इमोशन बट ऐन इस्केप फ्राम इमोशन। इट इज़ नाट दि इक्सप्रेशन आफ दि पर्सनालटी बट ए इस्केप फ्राम पर्सनालटी"

--सेलेक्टेड प्रोज़: टी०यस०इलियट,पे० ३०

---

१. कबीर ग्रंथावली -- सं० श्यामसुन्दर दास

कविता संवेग का परिवर्तित रूप न होकर संवेग से पलायन है । यह व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं अपितु व्यक्तित्व से पलायन है । टी० एस० इलियट के अनुसार कवि का लक्ष्य है -- कल्पना चित्रों की सृष्टि । लेकिन विचारणीय यह है कि कवि कोई मशीन नहीं है । मशीन से निकली सामग्री भी बतला देती है कि मशीन अच्छी है या खराब। यदि मशीन से निकली हुई सामग्री अच्छी है तो मशीन भी धन्य है ।यदि वस्तु खराब है तो समझ लेना चाहिए कि मशीन कोई पुर्जा टूटा पड़ गया है या घिस गया है । कवि और कविता में उत्पादक उत्पाद का संबन्ध है । कवि कहने का अर्थ है --कवि का व्यक्तित्व ।

कवि किसी वस्तु का सौन्दर्यांकन तटस्थ होकर नहीं कर सकता। उस सौंदर्य का चित्र खींचने के पूर्व कवि को सौन्दर्य से अभिभूत होना चाहिए । उस सुन्दरता को चित्रित करने के लिए कवि में एक प्रकार की विह्वलता उत्पन्न होती है । सौन्दर्य के साथ जब तक कवि की सौन्दर्य भावना का लगाव नहीं होगा तब तक चित्रांकन सफल नहीं हो सकेगा । अत: कल्पना भाव निरपेक्ष नहीं हो सकती । कल्पना का सम्बन्ध मनुष्य की आन्तरिक रमणीयता से है । जब तक मनुष्य के भीतर भाव जगत में कोई उथल-पुथल नहीं होती तब तक काव्य कल्पना का जन्म नहीं होता । कहने का आशय यह है कि कल्पना में कवि की बौद्धिक एवं भावात्मक -- दो प्रकार की चेतनाओं का समावेश है । इन्हीं दोनों चेतनाओं के विकास से ही तो व्यक्तित्व का निर्माण होता है ।

टी० एस० इलियट जब कहते हैं कि काव्य में व्यक्तित्व नहीं आता तब उनकी इस उक्ति में उनका व्यक्तित्व आ जाता है । इस उक्ति से पता चलता है कि कहने वाला चिन्तक है । सत्य के दूसरे पहलू पर भी विचार करता है ।

टी० एस० इलियट को हम इस प्रकार समझते हैं कि कवि के व्यक्ति के दो रूप हैं । एक में वह सामान्य मानव रहता है दूसरे में विशुद्ध कलाकार । दुकान पर बैठने वाले प्रसाद के भीतर एक दूसरा प्रसाद था जिसने कामायनी की रचना की। कवि का जो सामान्य मानव का रूप है उसमें वह भोजन वस्त्र की चिन्ता में लिपटा रहता है । लोक के नियमों में जकड़ा रहता है । समाज की रीतियों में बंधा रहता है । किन्तु उसका दूसरा रूप विशुद्ध कलाकार का होता है । कलाकार के व्यक्तित्व पर विचार करते हुए डा० नगेन्द्र कहते हैं -- व्यक्तित्व की महत्ता अर्थात् उसका विस्तार और गाम्भीर्य जीवन के महत्तर मूल्यों के साथ तादात्म्य करने से प्राप्त होते हैं और

इस महत्तर मूल्य के अन्त में बहुत कुछ समष्टिगत मूल्य ही होंगे -- यह ठीक है। परन्तु इनका निर्णय स्थूल दृष्टि से बाह्य (सामाजिक और राजनीतिक) आन्दोलनों को सामने रखकर नहीं करना होगा। वरन् व्यापक और सूक्ष्म धरातल पर देश और काल की सीमाओं को तोड़कर बहती हुई अखण्ड मानव चेतना के प्रकाश में ही करना होगा। यहां अखण्ड मानव चेतना से अभिप्राय एक युग और एक देश की चेतना से भिन्न जो युग-युग और देश-देश की व्यापक चेतना है उसी से है[१]।

टी० एस० इलियट का यह काव्य सिद्धान्त भारत के लिए नई बात नहीं है। हमारे यहां प्रतिभा को ही काव्य का हेतु कहा गया है। इलियट ने जिस व्यक्तित्व से पलायन की बात कही है वह कवि का सामान्य मानव के रूप का व्यक्तित्व है। लेकिन कवि का दूसरा व्यक्तित्व कविता में आएगा ही।

ठाकुर का व्यक्तित्व :

कवि के व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसकी कविता एक साधन है। इसी ओर संकेत करते हुए ठाकुर ने कहा है -- 'देखन चाहहु मोंहि जो मम कविता लखि लेहु'। कविता के अतिरिक्त कवि के जीवन से सम्बद्ध कुछ घटनाएं होती हैं जो उसके व्यक्तित्व की गांठ को खोलती हैं। ठाकुर के भी जीवन से सम्बद्ध कुछ घटनाओं का उल्लेख स्व० लाला भगवानदीन ने किया है। यहां उन्हीं घटनाओं के आधार पर ठाकुर के व्यक्तित्व पर विचार किया जायगा।

एक समय हिम्मत बहादुर के दरबार में पद्माकर और ठाकुर दोनों मौजूद थे। हिम्मत बहादुर ने पद्माकर से पूछा -- 'कहिए कवि जी, लाला ठाकुर दास जी की कविता कैसी होती है[२]'। पद्माकर ने कहा -- 'महाराज, लाला साहब की कविता तो अच्छी होतीहैपरन्तु पद कुछ हल्के जंचते हैं[३]'। ठाकुर ने तत्काल जवाब दिया -- 'इसी से तो हमारी कविता उड़ी-उड़ी फिरती है[४]'। ठाकुर के इस उत्तर के मूल में

---

१. 'सिद्धान्त और समीक्षा' में संगृहीत डा० नगेन्द्र का लेख-- 'साहित्य में आत्माभिव्यक्ति', पृ० ३२

२. ठाकुर ठसक -- 'जीवन चरित', पृ० ६

३. वही

४. वही

कवि का वह आत्मविश्वास व्यक्त है जो किसी कवि की कला को उत्कर्ष प्रदान करता है ।

एक बार महाराज हिम्मत बहादुर ने महाराज पारीछत को बांदे बुलाया। महाराज पारीछत तैयार होकर चल दिए । उस समय ठाकुर जैतपुर में मौजूद नहीं थे। बाद में आने पर पता चला । वे तुरन्त पारीछत का पीछा किए । अन्त में वे रास्ते ही में पारीछत से मिले । वहीं पर दो सवैया सुनाए । इन सवैयों को सुनकर तथा समझकर पारीछत सचेत हो गए । हिम्मत बहादुर के षड्यन्त्र को समझ गये । उन सवैयों में ठाकुर की दूरदर्शिता , उनका लोकज्ञान तो है ही, सबसे बड़ी बात है स्वामिभक्ति की भावना जिसने पारीछत के प्राण की रक्षा करके खंगराय के कुल को धन्य कर दिया । वे सवैये इस प्रकार हैं --

'कैसे सुचित्त भए निकसौ विहसौ विलसौ हरि दै गलबाहीं ।
ये छल छिद्रन की बतियां छलती छिन एक घरी पल माहीं।।
ठाकुर वे जुरि एक भए रचिहैं परपंच कछू ब्रज माहीं ।
हाल चवाइन को दुहचाल सो लाल तुम्हें या दिखात कि नाहीं[1] ।।१।।
निज मंत्र न औरन ते कहने अपने चित चोज विचारने हैं ।
पुनि नेक को नेक लटे को लटो यही रीति सदा उर धारने हैं।।
कह ठाकुर प्यारे सुजान सुनो मन की उरझी निरवारने हैं ।
चहुं ओर ते चौचंद चार उठो , सो विचार के भार संभारने हैं[2] ।।२।।

ठाकुर के इस कृत्य का पता महाराज हिम्मत बहादुर को चल गया। वे बहुत क्रुद्ध हुए। ठाकुर को दरबार में बुलाया गया । दरबार में हिम्मत बहादुर की धमकी पर जो उत्तर ठाकुर ने दिया, वह ठाकुर के ही योग्य था --

'सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के
दान जुद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके ।
नीति देनवारे हैं मही के महिपालन को   क्रमशः- -

१, ठाकुर ठसक --'जीवन चरित', पृ० ११
२, वही

कवि सनेही के जे मने ही साँचे उर हैं ।।
ठाकुर कहत हम वैरी बेवकूफन के
जालिम दमाद हैं अदानिया ससुर के ।
चोजन के चोर रसमोजन के पातसाह
ठाकुर कहावत पै चाकर चतुर के [1] ।।

ठाकुर केवल लेखनी साधना नहीं करते थे । खड्गराय के पौत्र थे । खड्ग साधना भी अधूरी नहीं थी । वे मही के महिपालन को नीति देनवारे थे । एक बार महाराज पारीछात की प्राण रक्षा इसी नीति के बल पर हुई थी । इस छंद में ठाकुर ने अपने कवि रूप का भी उल्लेख किया है। ठाकुर उनके कवि हैं जो साँचे उर के सनेही हैं । रीतिमुक्त कवि बारबार इस सच्चे उर की दुहाई देता है । यही उर उसका सर्वस्व है । वह तो इसी उर की आवाज़ को बिना किसी लाग लपेट के कह देता है और कविता बन जाती है । प्रेम में बनावट या कपट उसे पसन्द नहीं है ।

अन्तत: ठाकुर के इस उत्तर से हिम्मत बहादुर प्रसन्न हुए । वे बोले -- बस , बस , कवि जी । हम केवल इतना ही देखना चाहते थे कि आप केवल कवि ही हैं या पूर्वजों की तरह आप में कुछ हिम्मत भी है [2] । ठाकुर बोले -- राजा साहब, हिम्मत तो हमारे ऊपर सदैव पै अनूप रूप से बलिहार होती रही है । आज हमारी हिम्मत कैसे गिर जाएगी [3] । ठाकुर के इस व्यंग से हिम्मत बहादुर प्रसन्न हुए और अपने कटु व्यवहार के लिए क्षमा माँगी । इस व्यंग को समझने के लिए यह जान लेना चाहिए कि हिम्मत बहादुर का असल नाम अनूपगिरि था । हिम्मत बहादुर शाही खिताब था ।

एक बार ठाकुर कवि महाराज किशोर सिंह पन्नानरेश के दरबार में गये । उस समय राज्य की दशा कुछ अच्छी नहीं थी । पहले जैसा प्रबन्ध नहीं था । दरबारियों

---

१. ठाकुर ठसक -- जीवन चरित ,पृ० १२
२. वही, पृ० १३
३. वही

में द्वेष था । सब स्वार्थी हो गये थे । यह दशा देखकर ठाकुर को बहुत दु:ख हुआ ।

कवि संवेदनशील प्राणी है । सृष्टि में परिवर्तन के जिस रूप को हम प्रकृति का नियम कहते हैं वही कवि के शोक या हर्ष का कारण होता है। कभी तो वह भूमि से निकलते अंकुरों को देखकर पुत्रोत्सव मनाता है , कभी आंधी से टूटी हरी डाल को देखकर पुत्रशोक की स्थिति में हो जाता है। ठाकुर के निम्नलिखित छन्दों में इसी कवि-संवेदना का परिचय मिलता है जिन्हें पन्नानरेश की राज्य व्यवस्था से क्षुब्ध कवि ने लिखा था ।

चाल न वा चरचा न वा चातुरी वा रसरीति न प्रीति को डोर है।
सांच घटो बढ़ो झूठ जहान में लोभ के लाने जहां तहां दौर है ।।
ठाकुर वेई गोपाल वही हम वोही चवान रहे इकठौर है ।
मेंहे देखत मेरी भटू रिगरो ब्रज ह्वे गयो और को और है[1] ।।
वे परवीन विचच्छन लोग बने गे राने कछु आन भयो री ।
चीखे सवाद जहां अति मीठे सो सीखे स्वभाव नयेई नयेरी ।।
ठाकुर कौन सो का कहिए अब औ चितचाह वे वे समये री ।
वे दिन वे सुख वैसे उछाह सो वे सब वीर हेराय गए री[2] ।।

कहते हैं कि इन्हीं महाराज किशोर सिंह की छोटी रानी बड़ी लज्जावती थीं । उनकी लज्जा सीमा पर पहुंच गई थी । वे महाराज के भी सामने घूंघट नहीं हटाती थीं । रानी के इस व्यवहार से पन्ना नरेश को बड़ा कष्ट हो रहा था। प्रेम की बातें दीवाल की ओट से नहीं होती हैं । प्रेम वार्ता के समय प्रेमी प्रेमिका की आंखें एक रहें जिससे कि यदि कोई बात छूट भी जाय तो आंखें व्यक्त कर दें । महाराज ने अपनी इस परिस्थिति का निवेदन ठाकुर से किया । ठाकुर के पास था ही क्या?

१, ठाकुर ठसक, 'जीवन चरित',पृ० १३
२, वही

सवैए का बल था । एक सवैया लिखकर महारानी के पास भेज दिया । महारानी का मन फिरा और घूंघट पट हटने लगा। सवैया इस प्रकार है --

यों तरसाइबो कौनें बढ़ो , मन तो मिलिगो पै मिलें जल जैसो ।
कौन दुराव रहा उनसों जिनके संग साथ करा सुख ऐसो ।।
ठाकुर या निरधार सुनो तुम्हें कौन सुभाव परो है अनैसो ।।
प्राण पिया घट में बसिकें हंसिकें फिर घूंघट घालिबो कैसो[१] ।।

कहते हैं जिस समय ठाकुर बिजावर में रहते थे उसी समय वहां एक सुन्दरी सुनारिन भी रहती थी । ठाकुर उसके सौन्दर्य के उपासक हो गये थे । प्रतिदिन यदि और कुछ नहीं तो कम से कम एक बार उसे नज़र पर चढ़ा लेना आवश्यक हो गया था । दैवात्, एक बार वह बीमार पड़ी । बदली के चांद की तरह उसका दर्शन मुश्किल हो गया । ठाकुर बेचैन हो गये । पांचवें दिन उसके घर के पीछे वाली गली में जाकर यह सवैया पढ़ी --

गति मेरी यही निसिवासर है, चित तेरी गलीन के गाहने हैं ।
चित कीन्हों कठोर कहा इतनो अब तोहि नहीं यह चाहने हैं ।।
कवि ठाकुर नेकु नहीं दरसी कपटीन को काह सराहने हैं ।
मन भावे सुजान सोई करियो हमें नेह को नाते निबाहने हैं[२] ।।

कहते हैं कि सुजान उस सुनारिन का नाम था । वह दूसरे ही दिन स्वस्थ हो गई और कुंए पर पानी के बहाने आकर ठाकुर को दर्शन दी । लेकिन दुनिया के व्यवहार कुछ उलटे ही होते हैं । उस सुनारिन के घर वाले उसके चरित्र पर सन्देह करने लगे और तत्कालीन बिजावर नरेश से ठाकुर की शिकायत कर दिए । महाराज ने ठाकुर से इस सम्बन्ध में पूछा । ठाकुर ने कहा -- "मैं तो उसके सौन्दर्य का उपासक हूं । इससे अधिक मैं नहीं जानता । अन्त में महाराज ने ठाकुर को सात दिन के लिए नज़रबन्द कर लिया । कहते हैं कि वह कुंआ जहां कि सुनारिन पानी भरने के लिए जाया करती थी, सूख गया । सुनारिन ने अपने पति से कहा कि ठाकुर का नजरबन्द

---

१. ठाकुर ठसक, 'जीवन चरित्र', पृ० १४
२. वही, पृ० १५

होना ही कुंआ सूखने का कारण है । यही नहीं धीरे-धीरे नगर के कूए सूखने लगे । सुनारिन के पति को विश्वास हो गया । उसने आकर महाराज से निवेदन किया और ठाकुर मुक्त कर दिए गए । कहते हैं कि ठाकुर निजावर छोड़ दिए और फिर कभी नहीं लौटे । यह भी कहा जाता है कि उस स्त्री ने सधवा होते हुए भी जीवन भर शृंगार नहीं किया ।

ठाकुर के सम्बन्ध में एक कथा इस प्रकार कही जाती है कि सन्ध्या के समय जैतपुर नरेश पारीछात अपने दरबारियों के साथ ऐसे स्थान पर बैठते थे जो सार्वजनिक मार्ग के पास था । उसी मार्ग से एक महाजन की पतोहू सुबह शाम आती जाती थी। वह बड़ी सुन्दरी थी । लेकिन रूप गर्व या संकोच के कारण दरबारियों की ओर कभी नहीं देखती थी । ठाकुर ने यहां भी प्रयास किया ।एक जादू भरा सवैया सुना दी । वह स्त्री विदुषी थी । कविता भी करती थी । ठाकुर की कला पर प्रसन्न होकर उसने अपना सोने का कंगन निकाल कर दे दिया। वह सवैया देखिए --

आंख न देखत ध्यान में बोलत नेह बढ़ाए नितै आ नितै जा।
चन्दमुखी यह सोच बिहायकै , मानी सुखी अभिमानी कितै जा।।
ठाकुर छैल छबीले छिपे कहुं , सौतिन मांहि सुहाग जितै जा ।
दै जा दिखाई री.कंजा निहाल चितैजा वियोग चितैजा चितैजा[1] ।।

एक बार महाकवि ठाकुर बीमार पड़े । वैद्य ने दवा देकर कहा कि परसों से इसका सेवन करना । ठाकुर ने राम का नाम लेकर उसी दिन से दवा खाना आरम्भ कर दिया । उसी बीमारी में एककवित्त की रचना हुई । ठाकुर स्वस्थ हो गये । वह कवित्त देखिये--

राम मेरे पंडित अखंडित सुदिन सोधे
राम मेरे गुरु जप मेरे राम नाम हैं।

क्रमशः - -

१, ठाकुर ठसक -- 'जीवन चरित्', पृ० १७

राम राम गावतहिं राम राम ध्यावतहिं
राम राम सोचत कहत आठो जाम है ।।
ठाकुर कहत साँची आम मोहि राम ही की
राम ही गो काम घनधाम मेरे राम हैं ।
राम मेरे वेद विसराम मेरे राम साँचो
राम मेरी औषधि जतन मेरे राम हैं[1] ।।

कहते हैं कि ठाकुर के पड़ोस में एक धनवान की लड़की ससुर के घर से लौटी थी । दिन भर इधर-उधर सखी सहेलियों से मिलने के लिए उड़ा करती थी । उसकी इस असह्य चपलता से खीझ कर ठाकुर ने यह सवैया कह दी --

लहरैं उठैं अंग उमंगन की मद जोवन के लहराती फिरै ।
बड़री अंखियान चितै तिरछै चित लोगन के लहराती फिरै ।।
कह ठाकुर दै अति आप खरी निरखे न फिरै थहराती फिरै ।
सिर ओढ़े उढ़ेनी कसे छतिया फरिया पहरे फहराती फिरै[2] ।

अब ठाकुर के कुछ छन्दों के आधार पर उनके व्यक्तित्व का अनुमान लगाइए । ठाकुर की कामना थी --

दौलत जो दीजो तौ दीजो कुछ सोच फिर
एतो वर दीजो मेरो जनम सुधारियो ।
संग परवीनन को दीनन पै दाया नित
प्रेम में मगन ऐसे दिन ज्यु निवारियो ।।
ठाकुर कहत जो अधीन भयो रावरे तो
जासो जैसो नातो तासो तैसो और पारियो ।
एहो व्रजराज तेरे पाइ कर जोरे गहौं
प्रानहू नजर पै न नियत बिगारियो[3] ।

---

१. ठाकुर ठसक -- 'जीवन चरित', पृ० १८-१९
२. वही, पृ० २०
३. ठाकुर ठसक -- छंद संख्या ६

ठाकुर में नवयुवक की रसिकता , सिपाही का साहस और फकीर का त्याग था । उनका हृदय विशाल था । उदाहरण के लिए --

दस बार बीस बार बरज दई है याहि
ऐते पै न माने जो तौ जरन बरन देव ।
कैसो कहा कीजै कछु आपनो करो न होइ
जाके जैसे दिन ताहि तैसेई भरन देव ।।
ठाकुर कहत मन आपनो मगन राखौ
प्रेम निरसंक रस रंग बिहरन देव ।
बिधि के बनाए जीव जेते हैं जहां के तहां
खेलत फिरत तिन्हें खेलन फिरन देव[१] ।।

ठाकुर के व्यक्तित्व की व्याख्या करने के बाद हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि ठाकुर एक निर्भीक वक्ता थे । बहती बयार के सामने पीठ नहीं करते थे अपितु सीना तान कर चलने वाले थे । वे केवल कवि नहीं थे । जरूरत पड़ने पर तलवार भी चला सकते थे। उनमें लोक जीवन का गम्भीर अनुभव था । राम नाम में गहरी आस्था थी । सौन्दर्य के प्रति सम्मान की भावना थी । स्त्रियों के मन को हिला देने वाली रसिकता भी ठाकुर में थी । प्रकृति से स्नेह था किन्तु मानव प्रकृति से विशेष स्नेह था । दशहरा, होरी आदि के वर्णन से स्पष्ट है कि अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम था । यदि हम थोड़े में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि ठाकुर का व्यक्तित्व हृदय प्रधान था ।

काव्य ग्रन्थ : ठाकुर कवि की रचनाओं के दो संग्रह अभी तक प्रकाशित पाए जाते हैं । जिनमें एक ठाकुर शतक है और दूसरा ठाकुर ठसक। ठाकुर शतक पहले का है और भारत जीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित हुआ था । इसमें १०७ पद्य संगृहीत हैं । ठाकुर ठसक उसके २२वर्ष पीछे साहित्य सेवक कार्यालय, काशी से निकला था और उसमें ठाकुर के १९२ पद्य सम्मिलित हैं । पहले संग्रह के विषय में ऐसा कोई दावा नहीं किया गया था कि यह ठाकुर की रचनाओं का विशुद्ध संग्रह है । दूसरे संग्रह के संपादक

१, ठाकुर ठसक, छन्द संख्या २४

स्व० लाला भगवान दीन ने पहले संग्रह के विषय में कहा है कि -- 'हाल में जो ठाकुर शतक ग्रन्थ भारत जीवन प्रेस, बनारस से छपा है बहुत अशुद्ध है'[१]।

ठाकुर कवियों की रचनाएं इस प्रकार मिल जुल गई हैं कि उनको अलग करना एक समस्या है। भाषा को आधार मानकर स्व० लाला भगवान दीन ने जैतपुरी ठाकुर की कविताओं को अलग करने का प्रयास किया है। वे कहते हैं -- 'जैतपुरी ठाकुर की कविता में बहुधा कोई न कोई लोकोक्ति अवश्य पाई जाती है और उनकी भाषा में ऐसे ऐसे बुन्देलखण्डी शब्द और मुहावरे पाए जाते हैं कि अन्य देशीय कवि बिना कठिनता के उनका प्रयोग नहीं कर सकते'[२]। भाषा के आधार पर ठाकुर कवियों की कविताओं के वर्गीकरण का नमूना लाला साहब ने पेश किया है।

प्राचीन ठाकुर असनी वाले की कविता

न्योते गए घर के सिगरे सो बेरामी को व्याज के आजु रही मैं।
ठाकुर हे बहिरी इक दासी सो रासी बरोठे विचारि के जी मैं॥
आए भले खिरकी मग ह्वै आज आइबो चाहत ही हुती ही मैं।
आजु निसामर प्यारे निसा भरि कीजिए लालन केलि खुसी मैं[३]॥ १॥

बौरे रसालन की चढ़ि डारन कूकत क्वेलिया मौन गहे ना।
ठाकुर कुंजन कुंजन गुंजत भौंरन भीर चुपैबो चहे ना॥
सीतल मन्द सुगंधित दीर समीर लगे तन धीर रहे ना।
व्याकुल कीन्हो वसन्त बनायके जाय के कंत सों कोऊ कहेना[४]॥२॥

ऊपर लिखे गये सवैयों में बेरामी (बीमारी), बरोठा (पौर), बनायके (बिलकुल) शब्दों के आधार पर लाला साहब ने इन्हें प्राचीन ठाकुर असनी वाले की कविता मान

---

१. ठाकुर ठसक -- 'जीवन चरित', पृ० २
२. वही
३. वही, पृ० ३
४. वही.

ली है। लाला साहब का कहना है कि ये शब्द ऐसे शब्द हैं जो अधिकतर अन्तर वेद में बोले जाते हैं[१]।

असनी वाले दूसरे ठाकुर की कविता

प्रात झुकाझुकि वेष छिपायकै गागर लै घर तें निकरी ती।
जानि परी न कितेकैक बार है जाय परी जहं होरी घरीती।।
ठाकुर दौरि परे मोहि देखिकै भागि बची री बड़ी सुघरी ती।
वीर की सौं जो किवारन देउं तो मैं होरिहारन हाथ परीती[२]।।१।।
आयो वसन्त मिल्यो नहि कंत मो आनद में तिय कौ लौं मरैगी।
जेठहूं ज्वालन सों जरिहैं तन कामिन काम सों कौ लौं लरैगी।।
ठाकुर जो पै न आइ हैं श्याम अराम को कौन उपाय करैंगी।
जाय दरार रही छतिया यह बूंद परे अरराय परैंगी[३]।।

किवाड़ देना (किवाड़ बन्द कर लेना), दरार खाना (फट जाना) शब्दों के आधार पर लाला साहब ने इन्हे असनी वाले दूसरे ठाकुर की कविता सिद्ध की है।

जैतपुरी ठाकुर की कविता

दिवरानी जेठानी सबै जगती खड़को सुनि हैं न गहो बहियां।
हमैं सोवन देउ उलाहत का हरि घीर घरो हिरदय महियां।।
कह ठाकुर क्यों अकुलाव लला इतनी सुनि राखिय मो पहियां।
सब रैन घरी न बकाओ हमैं अबै सेर में पोनी कती नहियां[४]।।१।।

---

१. ठाकुर ठसक, जीवन चरित, पृ० ५
२. वही, पृ० ४
३. वही
४. वही

पावस में परदेस ते आनि मिले पिय औ मन भाई भई है ।
दादुर मोर पपिहरा बोलत तानर आनि घटा उनई है ।।
ठाकुर वा सुखकारी सोहावनि दामिनि काँध किते धौं गई है।
री अब तो घन घोर गरजो बरसो तुम्हें धूर दई है[1] ।।

उलाहत (जल्दी), धूर देना (चुनौती देना) आदि ऐसे शब्द हैं जो बुन्देलखण्ड में ही बोले जाते हैं । इसलिए ये छन्द बुन्देलखण्डी ठाकुर के ही हैं ।

किन्तु भाषा मात्र का आधार लेकर किसी कवि की कविता मान लेने की इस रीति से कुछ विद्वान सहमत नहीं हैं । पं० परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है -- "उन्होंने अपने संपादित संस्करण में पद्यों की प्रामाणिकता का कोई युक्तिसंगत आधार नहीं ठहराया है जिस कारण उसमें संगृहीत अनेक पद्यों के जैतपुरी प्रेमी ठाकुर कवि कृत होने में सन्देह रह जाता है । स्व० लाला जी ने जिन भाषा एवं शैली विषयक इनकी कविताओं की ओर संकेत किया है, वे पर्याप्त नहीं जान पड़ते[2] ।

लाला जी ने ठाकुर ठसक संग्रह प्रस्तुत करते समय यहां तक असावधानी दिखलाई है कि जिन पद्यों को उन्होंने अपने उस संग्रह के प्रारम्भ में प्राचीन ठाकुर असनी वाले या दूसरे ठाकुर की कविता कहकर उद्धृत किया है उन्हें ही फिर उनके भीतर स्थान दे दिया है । उदाहरण के लिए प्रारंभिक भाग के पृष्ठ ३ में जो सवैए (३ और ५ की संख्या वाले) उक्त प्राचीन ठाकुर कवि के कहे गए हैं वे ही मूल भाग के क्रमश: २७ एवं २१ संख्यक पृष्ठों पर जैतपुरी ठाकुर की रचनाओं के रूप में संगृहीत कर लिए गए हैं । उसी प्रकार उनके पृष्ठ ४ पर जो ४ और ५ की संख्या वाले सवैए असनी वाले दूसरे ठाकुर के बतलाए गए हैं, वे भी फिर आगे क्रमश: २४ एवं २६ संख्यक पृष्ठों पर दे दिये गये हैं । लाला साहब की इसी असावधानी की ओर शुक्ल जी ने भी संकेत किया है -- "बुन्देलखण्डी ठाकुर की कविताओं का एक अच्छा संग्रह ठाकुर ठसक के नाम

---

१. ठाकुर ठसक -- 'जीवन चरित्', पृ० ४
२. मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियां तथा नवनिबन्ध, पृ० १६८

से श्रीयुत लाला भगवानदीन जी ने निकाला है । पर इसमें भी दूसरे दो ठाकुरों की कविताएं मिली हुई हैं[१] । इस संग्रह की महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें ठाकुर का खोजपूर्ण वंश वृक्ष एवं विस्तृत प्रमाणिक जीवन चरित उपलब्ध है । इसमें ठाकुर के पुत्र दरियाव सिंह चातुर और पौत्र शंकर प्रसाद की भी कविताओं की कुछ बानगी पेश की गई है । भर्तृहरि की कविताओं की तरह ठाकुर की भी कविता को हम नीति, भक्ति और शृंगार -- तीन भागों में बांट सकते हैं । अन्य प्रामाणिक संग्रहों के अभाव में ठाकुर को ही केन्द्र में रखकर ठाकुर के काव्य पर विचार प्रस्तुत किया जाएगा ।

---o---

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३८३